# आलू एक ऐतिहासिक सब्ज़ी है

डॉ. डी. बालसुब्रमण्यन

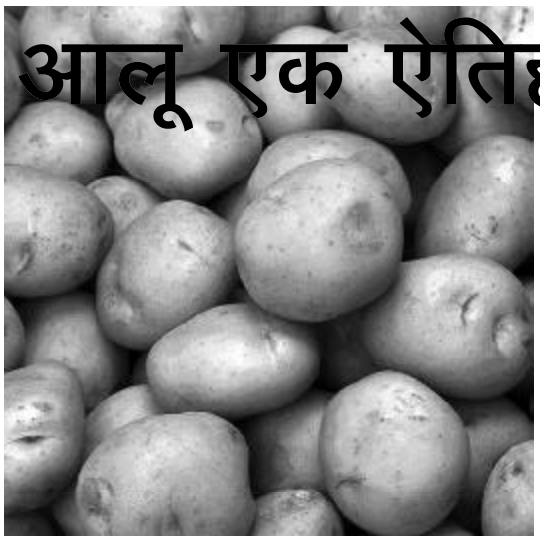

**गौरतलब बात यह है कि पत्ता गोभी, फूल गोभी और चुकंदर के विपरीत घरों में आलू के प्रवेश को लेकर रूढ़िवादी हिंदुओं को भी कोई दिक्कत नहीं थी। मज़ेदार बात है कि आलू का उपयोग व्रत-उपवास के दिनों में फलाहार के तौर पर होता है। एक मायने में आलू भारतीय संस्कृति की समावेशी प्रवृत्ति का उम्दा उदाहरण है।**

समय-समय पर अंतर्राष्ट्रीय संस्थाएं पूरे के पूरे साल किसी चीज़ को समर्पित करते रहते हैं। यह वर्ष एक साधारण-सी चीज़ आलू को समर्पित है। इसे अंतर्राष्ट्रीय आलू वर्ष कहा गया है। आज तक किसी अन्य सब्ज़ी को इतना ऊंचा स्थान नहीं मिला है। आखिर क्यों? क्योंकि आलू दुनिया में सबसे अधिक पैदा की जाने वाली और दुनिया भर में खाई जाने वाली सब्ज़ी है।

आलू का उत्पादन विपुल है। पिछले वर्ष ही पूरी दुनिया में 32 करोड़ टन आलू का उत्पादन हुआ था। यह प्रति व्यक्ति 34 किलोग्राम के बराबर है। हममें से हर व्यक्ति के लिए प्रतिदिन 93 ग्राम आलू उपलब्ध था हालांकि भारतीय लोग प्रतिदिन औसतन मात्र 60 ग्राम आलू का ही सेवन करते हैं जबकि युरोप के लोग प्रतिदिन 300 ग्राम आलू गटक जाते हैं। ज़ाहिर है कि आलू तो गेहूं और चावल के समान अनाज की भूमिका निभाता है।

यह कोई अचरज की बात नहीं है कि दुनिया का सबसे अधिक आबादी वाला देश चीन दुनिया में आलू का सर्वाधिक उत्पादन करता है। रूसी संघ का वार्षिक उत्पादन दूसरे नंबर पर है - 3.7 करोड़ टन। भारत तीसरे नंबर पर है - 2007 में 2.6 करोड़ टन।

हमारे यहां 1935 में शिमला में केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान की स्थापना की गई थी। इसी प्रकार के संस्थान गेहूं, चावल, ज्वार और कपास के लिए भी हैं। भारत में अगले साल आलू का उत्पादन दुगना करने का लक्ष्य रखा गया है। सवाल यह है कि इस साधारण से आलू पर इतनी मेहरबानी क्यों? क्योंकि आलू भूखे लोगों का पेट भरता है। यह ऐसी जगहों के लिए उपयुक्त फसल है जहां ज़मीन कम है, श्रम पर्याप्त है, और जलवायु उतनी अनुकूल नहीं है। आलू के पौधे का लगभग 85 प्रतिशत भाग खाने योग्य होता है। इसकी तुलना में अनाज के पौधों का मात्र 50 प्रतिशत भाग खाने योग्य होता है। तो आलू कई मायनों में एक बड़ी चीज़ है।

आम धारणा के विपरीत आलू काफी पौष्टिक और अच्छा भोजन है। इनमें भरपूर ऊर्जा होती है और ऐसा भी नहीं है कि आलू में सिर्फ कार्बोहाइड्रेट ही होता है। कंदों को देखें तो आलू में सबसे अधिक प्रोटीन होता है और विटामिन सी तथा पोटेशियम भी पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं।

यह बात शायद पेरू और बोलिविया के एण्डियन्स को पहले ही पता थी और उन्होंने 8000 साल पहले आलू की खेती शुरू कर दी थी। वहां के इन्का इण्डियन्स ने निहायत प्रतिकूल वातावरण में आलू की अच्छी फसल उगाने के तरीके खोजे थे।

वहां की पहाड़ियों पर मिट्टी की गुणवत्ता और सूक्ष्म जलवायु हर पहाड़ी पर और हर ढलान पर अलग-अलग

होती है। इसके चलते इन लोगों ने सदियों के प्रयास से आलू की सैकड़ों किस्में विकसित कीं। इस जिनेटिक विविधता के फलस्वरूप आलू ने दुनिया भर में कामयाबी के परचम लहराए। 16वीं सदी में स्पैनिश लड़ाके मेक्सिको और लैटिन अमेरिका के कई इलाकों से सोना लूटने को गए थे। लौटते समय वे सोने के अलावा जहाज़ भर-भरकर आलू, और उसके पौधे लेकर आए जिन्हें उन्होंने युरोप में जगह-जगह पहुंचा दिया। युरोपीय लोगों ने कई अन्य पौधों व फलों के साथ-साथ आलू को भी भारत पहुंचाया।

स्वर्गीय डॉ.टी.के.अचया ने अपनी पुस्तक 'ए हिस्टॉरिकल डिक्शनरी ऑफ इण्डियन फूड्स' में लिखा है कि पहले-पहल भारत में आलू को सिर्फ युरोपीय लोगों ने ही अपनाया था। उसके बाद मुस्लिमों ने इसे अपनाया। और जब डच लोग भारत आए तब उन्होंने यहां आलू की संस्कृति फैलाई और ब्रिटिश लोगों ने उन्हीं से आलू की विभिन्न किस्में प्राप्त की थीं।

आलू की शुरुआती खेती देहरादून के पहाड़ी ढलानों पर बने समतल खेतों पर होती थी, ठीक एण्डियन्स की तरह। यह 1830 के आसपास की बात है। जल्दी ही आलू को मैदानों में उगाने की तकनीकें भी खोज ली गईं।

गौरतलब बात यह है कि पत्ता गोभी, फूल गोभी और चुकंदर के विपरीत घरों में आलू के प्रवेश को लेकर रूढ़िवादी हिंदुओं को भी कोई दिक्कत नहीं थी। मज़ेदार बात है कि आलू का उपयोग व्रत-उपवास के दिनों में फलाहार के तौर पर होता है। एक मायने में आलू भारतीय संस्कृति की समावेशी प्रवृत्ति का उम्दा उदाहरण है।

आलू ने हमें जिनेटिक विविधता का सबक भी सिखाया है और बताया है कि कैसे एक ही किस्म पर भरोसा करना संकट को न्यौता देने के समान है।

उन्नीसवीं सदी के मध्य में जब इंग्लैण्ड के लोभी ज़मींदारों ने आयरलैण्ड की अधिकांश ज़मीन पर कब्ज़ा कर लिया था, उस समय गरीब आइरिश लोगों को पेट भरने के लिए आलू का ही सहारा लेना पड़ा था। वहां इसका नाम था *ब्रेडरूट*। करोड़ों गरीब आइरिश लोग आलू पर ही निर्भर थे। उस समय आलू पर एक फफूंद का आक्रमण हुआ, जो आलू के कंद को काला कर देती थी और उसे रातों रात दुर्गंधयुक्त लसलसे पदार्थ में बदल देती थी। लगातार तीन सालों तक इस 'ग्रेट पोटेटो ब्लाइट' ने आयरलैण्ड में आलू की पूरी फसल को तबाह किया और लाखों गरीब आइरिश लोग भुखमरी के शिकार हो गए। उस समय के इस अकाल के वर्णन भयानक दास्तान कहते हैं। 'बॉटनी ऑफ डिज़ायर' में माइकल पोलन लिखते हैं: "लोग झाड़-झंखाड़ खाते हैं, पालतू जानवरों को खा जाते हैं, यहां तक कि इन्सान का मांस तक खा जाते हैं। सड़कों पर कंकालों के अवशेष पड़े हैं। ईश्वर लोगों की रक्षा करे।" एक दशक में आयरलैण्ड की आबादी आधी रह गई थी। शेष बचे कई सारे लोग नावों पर सवार होकर अमेरिका कूच कर गए।

और यह सब मोनो कल्चर का परिणाम था। उपरोक्त पुस्तक में ही माइकल पोलन बताते हैं: "इस फफूंद ने एण्डियन्स पर कहर नहीं ढाया, ढा भी नहीं सकती थी, क्योंकि वे लोग आलू की एक-दो नहीं दर्ज़नों किस्में उगाते थे, जिनमें से कई इस रोगकारी की प्रतिरोधी थी।"

हमने यह सबक भारत में भी सीखा है - हम यहां एक ही किस्म नहीं उगाते हैं जैसा कि मैकडोनाल्ड कंपनी चाहती है। शिमला के केंद्रीय आलू अनुसंधान संस्थान व उसके 6 क्षेत्रीय केंद्रों पर आलू की 1200 किस्मों का जर्म प्लाज़्म उपलब्ध है। इन केंद्रों ने 40 उन्नत किस्में तैयार की हैं और इनके पास ब्लाइट चेतावनी तंत्र भी मौजूद है।

भारत एक वैश्विक समूह का सदस्य है जो आलू के जीनोम की ृंखला पता करने का प्रयास कर रहा है। आलू में 12 गुणसूत्रों पर 84 करोड़ क्षारों से बना डी.एन.ए. होता है। यह विशाल परियोजना नेदरलैण्ड में स्थापित है और इसकी मदद से आलू की 5000 जंगली व देसी किस्मों के जीन्स को पहचाना जा सकेगा। ***(स्रोत फीचर्स)***